दैनिक जागरण

मृत्यु के भय को परास्त करके ही जीवन का आनंद लिया जा सकता है

ईवीएम विरोधी विलाप

आधे-अधूरे तथ्यों और अफवाहों के आधार पर इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन को संदिग्ध बताने का अभियान फिर से छिड़ जाने पर आश्चर्य नहीं। कुछ राजनीतिक दलों और ईवीएम के बैरी बन बैठे लोगों का यह पुराना शगल है। कभी-कभी लगता है कि कुछ लोगों ने ईवीएम को बदनाम करने का ठेका ले रखा है और शायद यही कारण है कि वे सुप्रीम कोर्ट के फैसलों से भी संतुष्ट नहीं होते। ईवीएम के खिलाफ ताजा पहल आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू ने की है। आंध्र प्रदेश में विधानसभा और लोकसभा के पहले चरण के लिए मतदान होते ही वह जिस तरह ईवीएम में गड़बड़ी का रोना रोते हुए दिल्ली दौड़े आए उससे तो यही लगता है कि उन्हें यह आभास हो गया है कि चुनाव नतीजे उनके मनमाफिक नहीं रहने वाले। सच्चाई जो भी हो, वह निर्वाचन आयोग के अधिकारियों से मिलने के लिए ईवीएम चोरी में आरोपित व्यक्ति को जिस तरह तकनीकी विशेषज्ञ बताकर अपने साथ लाए उससे उनकी मंशा पर सवाल खड़ा होना स्वाभाविक है। यह वह व्यक्ति है जो करीब एक दशक से यह साबित करने की नाकाम कोशिश कर रहा है कि ईवीएम में छेड़छाड़ की जा सकती है। ऐसे खुराफाती तत्व और भी हैं। एक वह था जिसने अभी हाल में लंदन में ईवीएम हैक किए जाने को लेकर हास्यास्पद और विचित्र दावे किए थे। इसी तरह का दावा दिल्ली विधानसभा में भी एक नकली ईवीएम के जरिये किया जा चुका है। यह भी याद रहे कि जब निर्वाचन आयोग ने ईवीएम हैक करके दिखाने की चुनौती पेश की थी तो उसका सामना करने कोई नहीं आया था।

समस्या केवल यह नहीं है कि समय-समय पर कुछ राजनीतिक दल ईवीएम के खिलाफ शिकायतें लेकर सामने आ जाते हैं। समस्या यह भी है कि अफवाह आधारित इन शिकायतों को मीडिया का एक हिस्सा हवा देता है। इसी कारण रह-रह कर ऐसी खबरें आती रहती हैं कि ईवीएम का कोई भी बटन दबाने पर वोट किसी एक ही दल को जाता दिखा। कई बार ईवीएम में खराबी को इस रूप में पेश किया जाता है कि उसमें छेड़छाड़ संभव है। दुनिया की कोई भी मशीन खराब हो सकती और मतदान के दौरान ईवीएम में खराबी आने की समस्या का समाधान खोजने की जरूरत है, लेकिन इस जरूरत पर बल देने के बहाने मतपत्र से चुनाव कराने की मांग वैसी ही है जैसे ट्रेन दुर्घटना के बाद कोई बैलगाड़ी से यात्रा को आवश्यक बताए। यह समझ से परे है कि 21 राजनीतिक दल किस आधार पर 50 प्रतिशत मतदान पर्चियों का मिलान ईवीएम से करने की अपनी पुरानी मांग को लेकर सुप्रीम कोर्ट जाना चाह रहे हैं? क्या चंद दिन पहले ही सुप्रीम कोर्ट ने यह आदेश नहीं दिया कि हर विधानसभा के एक के बजाय पांच बूथ की मतदान पर्चियों का मिलान ईवीएम से किया जाए? राजनीतिक दल सुप्रीम कोर्ट जाने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन आखिर कुछ माह पहले ही तीन राज्यों में ईवीएम के सहारे जीत हासिल करने वाली कांग्रेस किस मुंह से उसके खिलाफ दलीलें दे रही है? निःसंदेह यही सवाल आम आदमी पार्टी से है जिसने दिल्ली विधानसभा चुनाव में 70 में से 67 सीटें जीती थीं।

अपने-अपने दावे

उत्तराखंड में पांचों सीटों पर हुए मतदान ने सियासी पार्टियों के साथ ही राजनीतिक विश्लेषकों को भी उलझन में डाल दिया है। राज्य की पांचों लोकसभा सीटों पर इस बार भी पिछले लोकसभा चुनाव के लगभग बराबर ही मतदान हुआ। वर्ष 2014 में राज्य में कुल मतदान प्रतिशत 61.67 था, जबकि इस बार 61.50 प्रतिशत मतदाताओं ने अपने मताधिकार का प्रयोग किया। गुरुवार को मतदान समाप्ति पर निर्वाचन आयोग ने मतदान का जो अनंतिम आंकड़ा जारी किया था, वह 57.85 प्रतिशत था, लेकिन तब तक दूरदराज के हिस्सों से आयोग के पास पूर्ण ब्योरा नहीं पहुंच पाया था। मतदान के चौबीस घंटे बाद राज्य निर्वाचन कार्यालय ने राज्य की पांचों सीटों पर मतदान के अंतिम आंकड़े जारी किए। अभी मतगणना के समय इस मतदान प्रतिशत में कुछ और इजाफा तय है, क्योंकि तब सर्विस मतदाताओं के डाक से आए मत भी गिने जाएंगे। सर्विस मतदाताओं की संख्या 90 हजार से ज्यादा है, लिहाजा मतगणना के बाद राज्य के कुल मतदान प्रतिशत में थोड़ा वृद्धि और होगी। यानी अगर यह कहा जाए कि पिछली बार और इस बार राज्य में मतदान प्रतिशत लगभग बराबर ही रहा तो गलत नहीं होगा। इस वोटर टर्नआउट ने सियासी पार्टियों और उनके नेताओं को जरूर असमंजस में डाल दिया है। उत्तराखंड में यह अलग राज्य बनने के बाद चौथे लोकसभा चुनाव हैं। दिलचस्प बात यह कि पहले तीन चुनावों में हमेशा पहले से ज्यादा मतदान प्रतिशत रहा। वर्ष 2004 में 48.07 मतदान हुआ और पांच में से तीन सीटें भाजपा ने जीतीं, जबकि कांग्रेस व सपा के हिस्से एक-एक सीट आई। वर्ष 2009 में 53.43 प्रतिशत मतदाताओं ने मताधिकार का इस्तेमाल किया और कांग्रेस सभी का सूपड़ा साफ करते हुए पांचों सीटों पर परचम फहराने में कामयाब रही। वर्ष 2014 में मतदान प्रतिशत 61.67 तक पहुंच गया और इस बार नतीजे पिछली बार के बिल्कुल उलट आए। तब भाजपा ने पांचों सीटों पर जीत दर्ज की। इस बार भी वर्ष 2014 के लगभग बराबर ही मतदान प्रतिशत रहा है। इससे राजनीतिक विश्लेषक तक नतीजे को लेकर कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं।

विकास की धारा से दूर अदृश्य समाज

बद्री नारायण

हमारा जनतंत्र तभी गहरा होगा जब जनतांत्रिक चेतना एवं विकास की धारा हाशिये पर खड़े सामाजिक समूहों तक पहुंचेगी

भारतीय समाज जातियों में संयोजित समाज है। लगभग सौ से ज्यादा जातियां और उप-जातियां ग्रामीण भारत में रहती हैं। इन्हें अंग्रेजी शासन के दौरान तैयार जनगणना रपटों में सामान्य, ओबीसी एवं एससी जातियों में विभाजित किया गया। आज अनेक सरकारी योजनाओं का आधार प्रायः ये ही शासकीय श्रेणियां बनती हैं। इसके अलावा भारतीय समाज के विभाजन में पेशागत विभाजन भी एक महत्वपूर्ण आधार था। इस पेशागत विभाजन के तहत अनेक पेशों से जुड़ी श्रमिक जातियों का एक बड़ा सामाजिक समूह बनता है। इन जातियों में से कई ओबीसी कोटि में आती हैं, कई अति पिछड़ी जातियों की श्रेणी में आती हैं और कई अनुसूचित जातियों के वर्ग का हिस्सा मानी जाती हैं। इनमें से कई पेशागत जातियां हिंदू एवं मुसलमान, दोनों ही सामाजिक समूहों में आती हैं। हिंदुओं में बुनकर, कोरी सामाजिक समूह पाया जाता है तो मुसलमानों में इस पेशे से जुड़ा वर्ग जुलाहा सामाजिक समूह के रूप में जाना जाता है। हिंदुओं में नाई जाति पाई जाती है तो मुसलमानों में भी। धोबी हिंदू भी होते हैं तो मुसलमान भी। नट हिंदू होते हैं तो मुसलमान भी। इस प्रकार से पेशागत जातियां हमारे आधुनिक विभाजन की कोटियों को लांघते हुए आपस में मिलकर शिल्पकारी सामाजिक समूह के रूप में एक अन्य कोटि में भी समायोजित मानी जाती हैं। गड़ेरिया, कुम्हार, भड़भूजा, कहार, लोहार, लुनिया, तंबोली, माली, सोनार, बारी, नाई, दर्जी, धोबी, नट, मुसहर, बहेलिया, बासफोर, बेलदार, धानुक आदि ऐसी ही जातियां हैं। इनमें से गड़ेरिया, कुम्हार, भड़भूजा, कहार आदि जातियां ओबीसी का हिस्सा मानी जाती हैं। वहीं धोबी, बासफोर, धानुक, नट जैसी जातियां अनुसूचित जाति का हिस्सा मानी जाती हैं।

ये जातियां संख्या में छोटी हैं, लेकिन कुल मिलाकर ये एक बड़ी सामाजिक एवं मतदाता समूह में तब्दील हो जाती हैं। होता यह है कि ओबीसी एवं एससी में कुछ बड़ी जातियां राजनीति का केंद्र बन जाती हैं एवं विकास की धारा को अपनी तरफ मोड़कर अपने तक ही सीमित कर लेती हैं। ऐसे में शासन, सत्ता एवं राजनीति का ध्यान ऐसे सामाजिक समूहों की तरफ नहीं जाता। वे इन मुखर ओबीसी, एससी जैसी जातियों की छवियों में छिप जाती हैं। ऐसे में वे भारतीय जनतंत्र में अदृश्य सामाजिक समूह के रूप में विद्यमान रहती हैं। इनके भीतर आजादी के इतने वर्षों बाद भी न तो बेहतर जीवन की चाहत को अभिव्यक्त करने की क्षमता विकसित हो पाई है, न ही अपनी आकांक्षाओं को पाने की राजनीति का विकास ही इनमें हो पाया है। परिणामतः इनमें से अनेक के भीतर सामुदायिक राजनीतिक नेतृत्व का विकास भी नहीं हो पाया है।

भारतीय जनतांत्रिक सत्ता द्वारा चलाई जाने वाली विकास की योजनाएं भी इन तक सीधी नहीं पहुंच पाती हैं। राजसत्ता एवं उनसे जुड़े अधिकारी उन्हें ओबीसी एवं एससी के सरकारी चश्मे से देखते हैं। वे इनकी सामाजिक विशिष्टता एवं इनकी सतत बढ़ती जा रही सीमांतता को समझने में चूक जाते हैं। इनमें से अनेक आज आधुनिकता द्वारा पैदा किए गए संशय एवं द्वंद्व से जूझ रहे हैं। ये आधुनिक नवउदारवादी अर्थव्यवस्था एवं सत्ता द्वारा प्रस्तावित मात्र शारीरिक श्रम करने वाले सामाजिक समूह में बदलना नहीं चाहते। ये सिर्फ मनरेगा एवं इंफ्रास्ट्रक्चर से जुड़ी गतिविधियों में श्रमिक भर भी नहीं बने रहना चाहते।

जनसंख्या 52
देश में हिस्सा 52

ऐसे समूह स्वयं को ज्ञानवंत एवं कलावंत समूह मानते हैं। अतः ये मात्र शारीरिक श्रम करने वाले समूह में अपने को बदलने से हिचकिचाते हैं। इनकी अपनी सामाजिक अस्मिता रही है। इनमें से कई उसे छोड़ने के लिए जल्दी तैयार नहीं होते। ये यूं तो गरीब एवं वंचित समूह के रूप में आज हमारे समक्ष मौजूद हैं, किंतु सांस्कृतिक रूप से इनमें से कई अत्यंत संपन्न रहे हैं। इनकी अपनी लोककथाएं, लोकगीत एवं लोक संस्कार की पद्धति रही हैं। एक समय था जब इनमें से कइयों का पेशा इन्हें काफी धनवान बनाता था। एक समय बुनकर एवं जुलाहे कपड़ा बुनकर अच्छी मात्रा में धनोपार्जन कर लेते थे। इनके बनाए महंगे कपड़े समाज का धनाढ्य वर्ग तो खरीदकर पहनता ही था, समाज का सामान्य तबका भी इनके बनाए सस्ते कपड़े इनसे खरीदता था। कपड़ा उद्योग में मशीन के प्रवेश ने इन्हें तबाह कर दिया। इनकी हो रही तबाही को देखते हुए भी हमारी राज्य सत्ता ने इनके लिए कोई विकल्प नहीं प्रस्तुत किया।

वैसे ही नोनिया एक तरह की अभियांत्रिकी से जुड़ा सामाजिक समूह था। तालाबंदी, खुदाई, सड़क निर्माण, घर निर्माण में इन्हें विशेषज्ञता हासिल थी। ये इन कार्यों से पैसा कमाकर स्वयं को प्राक् आधुनिक समय में महत्वपूर्ण जाति के रूप में प्रकट करते थे। आधुनिक बाजार एवं मशीन पर केंद्रित व्यवस्था ने इन्हें भी तबाह कर दिया। ऐसी लगभग 40-50 सामाजिक समूहों की हो रही तबाही पर हमारी राजसत्ता एवं राजनीतिक दलों ने आंसू भी नहीं बहाए। शायद जिनके हाथों में राजनीति थी उन्हें अहसास भी नहीं हो पाया कि कैसे समाज का एक बड़ा सामाजिक समूह अपनी सांसें तोड़ रहा है। मौजूदा लोकसभा चुनाव जनतंत्र का महापर्व है। जनतंत्र के इस महापर्व में इनकी आवाज सुनने वाला शायद ही कोई हो। इनकी टूटती सांसों को राजनीतिक शक्ति प्रदान करने की दिशा में कोई भी राजनीतिक दल सोच ही नहीं रहा है। इनके लिए वैकल्पिक रोजगार का प्रश्न भी कहीं से हमारे जनतांत्रिक चुनाव का बड़ा विमर्श नहीं बन पाया है। इन जातियों को अनेक राजनीतिक दल अपने संगठन में भी ठीक से जगह नहीं दे पाए हैं। लिहाजा इनमें से अनेक जातियों के अपने एमएलए, एमपी और मंत्री, विधायक निकट में पैदा होंगे, ऐसी कोई संभावना भी नहीं दिख रही है। हालांकि इनमें से कुछ तुलनात्मक रूप से संख्या बल में भारी जातियां जो अति-पिछड़ी जातियों का हिस्सा हैं, को बहुजन राजनीति ने समय-समय पर स्थान दिया, परंतु इसमें भी कोई निरंतरता नहीं दिखती।

राजनीतिक दलों ने इनका वोट तो चाहा है, पर इन्हें अपनी पार्टी में स्थान देने की प्रतिबद्धता उनमें दिखाई नहीं देती। 2014 के आम चुनाव में और उसके बाद भारतीय जनता पार्टी के अध्यक्ष अमित शाह ने इनमें से कुछ जातियों के सम्मेलनों में जाकर उन्हें भाजपा के बैनर तले लाने की कोशिश तो की थी, किंतु इनके विकास एवं सत्ता में इनकी सहभागिता बढ़ाने के लिए एक सुसंगत नीति अभी बननी बाकी है। गरीब एवं गरीबी जैसे शब्द में कांग्रेस इन्हें समाहित मानती है, किंतु गरीबों के भी अनेक स्तर हैं जो समाज में जातियों की स्थिति से तय होते हैं। कम गरीब एवं ज्यादा गरीब जैसी समझदारी गरीबी शब्द में जोड़ने की जरूरत है। योजनाओं का लाभ पहले 'सबसे ज्यादा गरीब' के पास पहुंचना चाहिए, परंतु होता बिल्कुल उल्टा है। पिछड़ों एवं गरीब समूहों में जिन्होंने हाथ बढ़ाकर योजनाओं का लाभ प्राप्त कर लेने की शक्ति हासिल कर ली है उन तक तो योजनाओं का लाभ पहुंच पाता है। हाशिये पर बसे अनेक सामाजिक समूहों तक यह लाभ नहीं पहुंच पाता। फलतः इनकी सीमांतता और बढ़ती जा रही है। हमारा जनतंत्र तभी गहरा होगा जब जनतांत्रिक चेतना एवं विकास की धारा इन सीमांत पर बसे सामाजिक समूहों तक पहुंचेगी।

(लेखक गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान के निदेशक हैं)

response@jagran.com

प्रशासनिक सुधार के लिए बड़ी पहल

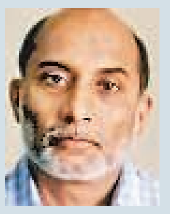

प्रेमपाल शर्मा

निजी क्षेत्र के विशेषज्ञों की प्रशासनिक ढांचे में नियुक्ति परंपरागत नौकरशाही के लिए संदेश है कि उसे भी स्वयं को बदलना होगा

भारत सरकार के संयुक्त सचिव स्तर के पदों पर नौ विशेषज्ञों की नियुक्ति फिर इस बात का प्रमाण है कि मौजूदा केंद्र सरकार में फैसले लेने और उन्हें पूरा करने की दृढ़ इच्छाशक्ति है। मोदी सरकार ने केंद्र सरकार के अति विशेषज्ञता वाले कई मंत्रालयों में संयुक्त सचिव के पदों को ऐसे विशेषज्ञों से भरने का फैसला पिछले साल जून में लिया था, जो विकास को गति दे सकें। वैसे इस पर बहस पिछले कई वर्षों से चल रही थी। नीति आयोग ने भी इस बात की सिफारिश की थी कि वैश्विक ज्ञान और विशेषज्ञता को देखते हुए संयुक्त सचिव स्तर पर अपने-अपने क्षेत्र के ऐसे विशेषज्ञों को लाने की जरूरत है। इसके दो फायदे हैं। एक तो सरकार से बाहर अपने-अपने क्षेत्रों की जो प्रतिभाएं हैं, उसका फायदा सरकार को मिलेगा और उन्हें सरकार को करीब से समझने का मौका भी मिलेगा। जाहिर है कि मौजूदा सरकार के अधिकारी भी उनसे सीख सकते हैं।

लगभग एक दशक पहले प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी केंद्र सरकार में लेटरल एंट्री की सिफारिश की थी। सातवें वेतन आयोग ने 2007 में भी ऐसी ही सिफारिश की थी, लेकिन नौकरशाही के आंतरिक विरोध के चलते बात आगे नहीं बढ़ी। स्वाभाविक है कि यथास्थितिवादी मौजूदा नौकरशाही कभी नहीं चाहेगी कि उनके एकछत्र साम्राज्य में कोई बाहरी भी सेंध लगाए। गौर करने लायक बात यह है कि जो नौकरशाही शिक्षा, स्वास्थ्य से लेकर मीडिया, सूचना सभी क्षेत्रों में सुधारों की पक्षधर रही है, उसने अपने संगठन में सुधार का कभी समर्थन नहीं किया। हालांकि उनके पुरजोर विरोध के बावजूद जून 2018 में विज्ञापन निकाला गया और लगभग 10 मंत्रालयों के लिए 6000 आवेदन आए। इन आवेदनकर्ताओं को पुनः अपनी विशेषज्ञता की विस्तृत जानकारी देने के लिए कहा गया और परिणाम यह निकला कि उसके बाद केवल 40 प्रतिशत आवेदक ही अपनी प्रविष्टियां पूरी कर पाए। अंततः 6000 में से सिर्फ 90 उम्मीदवारों को संघ लोक सेवा आयोग ने साक्षात्कार और अन्य प्रक्रियाओं के लिए उपयुक्त माना। अब ये विशेषज्ञ संयुक्त सचिव के रूप में वित्त मंत्रालय, कृषि मंत्रालय के अधीन सहकारिता और कृषक कल्याण, नागरिक उड्डयन, वाणिज्य, वन, पर्यावरण एवं जलवायु परिवर्तन, सड़क, परिवहन, ऊर्जा से लेकर जहाजरानी मंत्रालय में तैनात किए जाएंगे। उम्मीद है कि ये अगले दो महीनों में अपना कार्यभार संभाल लेंगे।

एक नजर इन चुने हुए विशेषज्ञों के नामों पर डाली जाए तो पाएंगे कि सभी अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ रहे हैं। काकोली घोष ने संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन में काम किया है और अब कृषि मंत्रालय में कार्यभार संभालेंगी। इसी तरह पनामा ऊर्जा के मुख्य कार्यकारी अधिकारी दिनेश दयानंद जगदाले अब ऊर्जा मंत्रालय में काम करेंगे। इनके वेतन और दूसरी सुविधाएं वहीं होंगी जो संघ लोक सेवा आयोग से चुने गए भारतीय प्रशासनिक सेवा, पुलिस सेवा या रेल मंत्रालय के इसी स्तर के दूसरे अधिकारियों को मिलती हैं।

अंतर इतना ही है कि यह नियुक्ति संविदा के आधार पर की गई है। शुरू में नियुक्ति तीन साल की है। उसके बाद उनके योगदान के आधार पर इसे पांच वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। पर्यावरण, वन, ऊर्जा, जलवायु परिवर्तन जैसे ये सभी मंत्रालय ऐसे हैं जहां नवीनतम ज्ञान और विशेषज्ञता की जरूरत होती है। संघ लोक सेवा आयोग और देश की अकादमिक दुनिया की जानकारी रखने वाले जानते हैं कि केंद्रीय सेवाओं में चुने जाने वाले सभी अभ्यर्थी बहुत कठिन तीन स्तरीय परीक्षा से जरूर चुने जाते हैं, लेकिन इन विषयों की उन्हें इतनी जानकारी नहीं होती जितनी कि आज के जटिल समय में जरूरत है। वे परंपरागत भौतिकी कानून, इतिहास के मेधावी छात्र हो सकते हैं, लेकिन वैश्विक दुनिया आज ज्ञान और शोध के जिस मोड़ पर खड़ी है वहां लगातार स्वयं को अद्यतन बनाए रखने की आवश्यकता होती है। मोटे तौर पर संयुक्त सचिव के स्तर पर पहुंचने के लिए लगभग 20 वर्ष का समय लग जाता है। यदि सिविल सेवा परीक्षा द्वारा नौकरियों में भर्ती की औसत आयु 28 वर्ष भी मानें तो इन्होंने अपनी पढ़ाई उससे पांच-सात साल पहले पूरी की होगी। यानी कि इनके पास लगभग 30 वर्ष पुराना ज्ञान है। जबकि इनके मुकाबले बाजार या दूसरे संगठनों से भर्ती किए हुए विशेषज्ञों ने अपना पूरा जीवन उसी एक क्षेत्र में बिताया है और उनकी योग्यता, काम, प्रकाशन भी जगजाहिर हैं।

इंग्लैंड और यूरोप के दूसरे देशों की नौकरशाही में इसकी शुरुआत चार दशक पहले ही हो गई थी और इसीलिए वहां की व्यवस्थाएं उतनी तंगहाल नहीं हुईं जितनी कि भारतीय। अमेरिकी अर्थशास्त्री जेके गैलब्रैथ के शब्दों में भारत की नौकरशाही दुनिया की सबसे भ्रष्ट और सुस्त नौकरशाही है। प्रशासनिक सुधार आयोग, सातवें वेतन आयोग, सुप्रीम कोर्ट की चेतावनी और सिफारिशों के बावजूद भी भारतीय नौकरशाही में वे अपेक्षित सुधार नहीं आ पाए जो इतने विशाल देश के विकास के रथ को गति दे सकें। हालांकि इससे पहले भी सचिव आदि पदों पर ऐसी नियुक्तियां यदा-कदा होती रही हैं। जैसे कि पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, मोंटेक सिंह आहलूवालिया की वित्त मंत्रालय में, नंदन नीलेकणी की सूचना प्रौद्योगिकी में नियुक्ति हुई थी। इसके अलावा भी पेट्रोलियम सचिव से लेकर विज्ञान मंत्रालय आदि में कई विशेषज्ञों की पूर्व में नियुक्तियां हुई हैं, लेकिन एक नियमित नीति और व्यवस्था के तहत ऐसा पहली बार हुआ है। अर्थात मीडिया में विज्ञापन देना, आवेदन मंगाना और संघ लोक सेवा आयोग को इस जिम्मेदारी को निभाने के लिए अनुरोध करना पहली बार हुआ है। सभी नियमों को अपनाते हुए लेटरल एंट्री प्रशासनिक सुधार की तरफ संभवतः पहला कदम बन सकता है।

परंपरागत नौकरशाही के लिए यह इशारा है कि यदि टिके रहना है तो सक्षम होना पड़ेगा और उस ज्ञान-विज्ञान की भी नवीनतम जानकारी रखनी होगी जिस पर आज दुनिया चल रही है। बाहर से आने वाले भी इस व्यवस्था को समझ पाएंगे कि एक बहुभाषी जटिल देश में कितने अवरोधों के बीच रास्ता निकालना पड़ता है। मौजूदा नौकरशाही और बाजार में उपलब्ध मेधावी पीढ़ी, दोनों को ही देश के विकास और व्यवस्था में सुधार के लिए उपयोग में लेने की जरूरत है। उम्मीद की जानी चाहिए कि ऐसी नियुक्तियां किसी विचारधारा, वंशवाद, क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर अपनी पहचान बनाएंगी।

(लेखक शिक्षाविद एवं पूर्व प्रशासक हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

जीवन का लक्ष्य

हम सभी को अपने जीवन में एक विशेष लक्ष्य को निर्धारित करना बहुत जरूरी है। अगर हम लक्ष्यविहीन जीवन जीने की कल्पना करें तो हममें और पशुओं में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। हमारे जीवन में कोई लक्ष्य ही नहीं होगा तो हम यहां-वहां भटकते रह जाएंगे, लेकिन पहुंचेंगे कहीं नहीं। ऐसे में हर मनुष्य को अपना लक्ष्य तय करना ही चाहिए, क्योंकि अगर हमारा कोई लक्ष्य होगा, तभी हमें मालूम होगा कि हमें किस दिशा में जाना है और हमारी मंजिल क्या है। मनुष्य के जीवन में लक्ष्य अतिआवश्यक है। हालांकि सवाल यह है कि हमारा लक्ष्य क्या हो? लक्ष्य के बारे में ज्यादातर लोगों की यही धारणा रही है कि अत्यधिक धन-दौलत, नाम, सम्मान अर्जित करना जीवन की सार्थकता है। अनजाने में हम लोगों से यह गलती हो जाती है कि हम पैसा और भौतिक सुख पाने को ही अपना लक्ष्य बना लेते हैं। हालांकि भौतिक संपदा सुविधाएं हैं, लेकिन यह हमारी मंजिल कदापि नहीं हो सकती। धन-दौलत एकत्र करना, विवाह करके बच्चे पैदा करना और बच्चों का लालन-पालन करके मृत्यु को प्राप्त करना ही मानव जीवन का लक्ष्य नहीं है। यह सच है कि हमें अपना जीवन निर्वाह करने के लिए कुछ कर्म जरूर करना होता है, लेकिन इसी को परम लक्ष्य मानने की भूल अक्सर मनुष्य से हो जाती है।

दरअसल दुनिया की चकाचौंध और माया-मोह में हम लोग ऐसे फंस जाते हैं कि अपनी वास्तविक एवं स्वाभाविक स्थिति को ही भूल बैठते हैं। हम अज्ञानता में निरंतर भौतिक सुखों की कामना करते हैं और इसे ही जीवन का परम लक्ष्य मान बैठते हैं। असल में जो लोग भौतिकता के प्रति आकर्षित और आध्यात्मिकता के प्रति बेपरवाह बने रहते हैं, वे अपने कर्मों की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जन्म और मृत्यु के चक्र में बंध जाते हैं। बहरहाल लाख कोशिशों के बावजूद उन्हें भौतिकतावादी जीवन से सच्ची खुशी नहीं मिलती और धरती से विदा होने के अंतिम क्षण तक उन्हें यही लगता है कि अभी कुछ छूट रहा है। सच यही है कि हमें मनुष्य जीवन भोग के लिए नहीं, बल्कि परमात्मा का अनुभव करने के लिए मिला है। हमारी आत्मा उस परमात्मा का अभिन्न अंश है, इसलिए आत्मा को जान लेना और उसके अनुसार जीवन को चलाना, यही हर मनुष्य के जीवन का वास्तविक लक्ष्य है।

महायोगी पायलट बाबा

मजबूत हो रहीं लोकतंत्र की जड़ें

डॉ. गौरीशंकर राजहंस

लोकसभा के प्रथम चरण के चुनाव में 20 राज्यों की 91 सीटों पर शांतिपूर्ण मतदान हुआ। यह अपने आप में अत्यंत ही संतोष का विषय है। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि आतंकवादियों की चेतावनी के बावजूद जम्मू-कश्मीर में अत्यंत ही शांतिपूर्ण वातावरण में चुनाव हुए। जम्मू-कश्मीर में लोगों में आतंकवादियों का कोई भय नहीं था और लोग अत्यंत ही शांतिपूर्ण तरीके से मतदान कर रहे थे। प्रथम चरण में प्रायः 60 प्रतिशत मतदान हुआ। जिसमें उत्तर प्रदेश में 64 प्रतिशत मतदान हुआ। आंध्र प्रदेश में 73 प्रतिशत, असम में 58 प्रतिशत, अरुणाचल प्रदेश में 66 प्रतिशत, बिहार में 54 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ में 57 प्रतिशत, जम्मू-कश्मीर में 58 प्रतिशत, महाराष्ट्र में 56 प्रतिशत, मणिपुर में 78 प्रतिशत, मेघालय में 67 प्रतिशत, मिजोरम में 60 प्रतिशत, नगालैंड में 79 प्रतिशत, ओडिशा में 70 प्रतिशत, सिक्किम में 74 प्रतिशत, तेलंगाना में 61 प्रतिशत, त्रिपुरा में 78 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश में 64 प्रतिशत, उत्तराखंड में 58 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 81 प्रतिशत, अंडमान निकोबार में 71 प्रतिशत और लक्षद्वीप में 65 प्रतिशत मतदान हुआ।

चुनाव आयोग के अनुसार जब तक आखिरी चरण का चुनाव संपन्न नहीं हो जाएगा तब तक परिणाम को लेकर कोई पूर्वानुमान घोषित नहीं किया जा सकता

पहले जब हिंदी भाषा-भाषी राज्यों में चुनाव होते थे तो भारी बूथ कैप्चरिंग होती थी। कुछ लोगों द्वारा जबरन फर्जी मतदान कराया जाता था और लोकसभा चुनाव के लिए जो चुनाव आयोग के अफसर आते थे उन्हें डरा-धमकाकर भगा दिया जाता था, परंतु इस बार ऐसा कुछ नहीं हुआ। पहले तो बाहुबलियों के चमचे कमजोर तबके के लोगों को डराते-धमकाते भी थे कि वे वोट डालने नहीं जाएं। अगर जाएंगे तो उन्हें उसका बुरा अंजाम भुगतना पड़ेगा। इस तरह लोग मतदान केंद्रों पर मतदान करने जाने से कतराते थे और ये बाहुबली अपने चहेते प्रत्याशियों के पक्ष में भरपूर जाली मतदान करवा देते थे। अब चुनाव आयोग की सख्ती के कारण ये बाहुबली गुंडागर्दी नहीं कर पा रहे हैं और सब जगह निष्पक्ष मतदान हो रहा है। पहले चुनाव के बाद जब मतदाताओं से पूछा जाता था कि उन्होंने किस प्रत्याशी को वोट दिया है तो लोग बाहुबलियों के डर से उन्हीं के चहेते प्रत्याशियों का नाम लेते थे और इस प्रकार जब मतदाताओं का मत समाचारपत्रों में छपता था तो उससे बचा हुआ चुनाव प्रभावित हो जाता था। पश्चिम के देशों में भी यह प्रथा है कि जब लोग वोट देकर मतदान केंद्रों से निकलते हैं तो पत्रकार उनसे पूछते हैं कि उन्होंने किसको वोट दिया। हालांकि वहां सभी लोग सच-सच बता देते हैं, क्योंकि उन्हें किसी का डर नहीं होता, परंतु भारत में खासकर हिंदी भाषी राज्यों में लोग सही बताने से कतराते हैं। इसलिए चुनाव आयोग ने यह प्रावधान किया कि जब तक आखिरी चरण का चुनाव संपन्न नहीं हो जाएगा तब तक कोई पूर्वानुमान या परिणाम घोषित नहीं किया जाएगा। अब प्रथम चरण के चुनाव में जो मत पड़े हैं इसका अंदाजा किसी को नहीं लग पाता है और लोग अपनी-अपनी अटकलें लगाते रहते हैं। यह एक बहुत अच्छा प्रावधान चुनाव आयोग ने किया है।

कुल मिलाकर भारत में लोकतंत्र की जड़ें अब बहुत मजबूत हो गई हैं, क्योंकि इतने बड़े देश में अब निष्पक्ष चुनाव हो रहा है।

(लेखक पूर्व सांसद एवं पूर्व राजदूत हैं)

कथनी-करनी में समानता का अभाव

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने अपने आलेख 'लेखकों की साख का सवाल' में जिस लेखकीय दायित्व की बात की है, उसका निर्वाह कर पाना हर लेखक के बस की बात नहीं है। क्योंकि आज कथनी-करनी की साम्यता के लेखकीय धर्म से परे 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले उपदेशी लेखकों की ही भरमार है। अपने लेखकीय विचार को मन-वाणी-कर्म से जीवन में उतार कर समाज को दिशा देने वाले लेखक, कवि, विचारक और साहित्यकारों का अभाव होता जा रहा है। कबीर, मीरा, तुलसी ने जो कहा उसे अपने जीवन में चरितार्थ भी किया, शायद इसीलिए उनकी वाणी की विश्वसनीयता आज भी बरकरार है, लेकिन उपदेशात्मक साहित्य लिखकर स्वयं के जीवन को अपने हिसाब से जीने वाले लेखक प्रारब्ध से प्रसिद्धि भले ही पा लें, परंतु वे कालजयी नहीं बन सकते। कालजयी विचार वही होता है जिसे लेखक स्वयं अपने जीवन में उतारकर चरितार्थ करता है। 'वह तोड़ती पत्थर, देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर' पंक्तियां लिखने वाले महाकवि निराला का यह भावबोध उनके जीवन में उस समय चरितार्थ होता दिखायी देता है जब किसी कवि सम्मेलन में सम्मान स्वरूप मिले अंगवस्त्र को वे रास्ते में ठंड से ठिठुरते भिखारी के वदन पर डाल देते हैं। इस तरह का लेखकीय वैचारिक आचरण आज दुर्लभ है। भारत को घायल करने वाले हिंसक आतंकवाद और नक्सलवाद पर प्रहार होते देखकर एक खास किस्म के साहित्यकारों की जमात ने सहिष्णु भारतीय समाज को 'असहिष्णु' बताते हुए जिस तरह से पुरस्कार वापसी का स्वांग रचा था, वह उनकी कथनी और करनी के अंतर को दर्शाने वाला था। यह लेखकीय धर्म न होकर सभ्य समाज को दिग्भ्रमित करने वाला कृत्य है। यह अच्छा रहा कि भारतीय समाज इन कथित साहित्यकारों के झांसे में नहीं आया। वस्तुतः अपने कथ्य और आचरण से समाज को दिशा देने वाला लेखक ही कालजयी बन सकता है।

डॉ. वीपी पाण्डेय, अलीगढ़

मेलबाक्स

सत्य को छिपाने की कोशिश

सी. उदयभास्कर अपने लेख, आतंक को न दें धार्मिक रंग, में एक ओर तो कहते हैं कि इस्लामी आतंक कुछ नहीं है। दूसरी ओर लिट्टे के श्रीलंकाई आतंक और गोडसे द्वारा गांधी की हत्या के आधार पर हिंदू आतंक के अस्तित्व को सही ठहराते हैं, यह तर्क चलने वाला नहीं है। पहली बात तो यह कि लिट्टे प्रमुख वी प्रभाकरण और उसके तमाम कैडर के विषय में लोग जान चुके हैं कि वे ईसाई थे, हिंदू नहीं। इसीलिए यूरोप के कई ईसाई देश लिट्टे को सशस्त्र बनाते रहे। हिंदू बनाम बौद्ध का वातावरण बने, ये ईसाई देशों के हित में था। नाथूराम गोडसे के पीछे कोई हिंदू संगठन नहीं था, यह गांधी-हत्या केस के फैसले तथा न्यायमूर्ति जीवन राम कपूर जांच आयोग रिपोर्ट से स्पष्ट है। फिर इस दो घटनाओं को हिंदू आतंक का सुबूत किस आधार पर माना है लेखक ने? समझौता एक्सप्रेस मामले में लिखते समय उन्होंने सत्य को छुपाने की कोशिश की है। ब्लास्ट के बाद सिमी नामक प्रतिबंधित संगठन के प्रमुख सफदर नागौरी और उसके भाई कमरुद्दीन नागौरी की अपराध-स्वीकृति जांच एजेंसी ने प्राप्त कर ली थी। उनके कथन की पुष्टि अमेरिका ने भी कर दी थी, जिसने डेविड कोलमेन हेडली नामक पाक आतंकी को पकड़ कर उससे जो राज उगलवाए, वे तथा नागौरी-बंधुओं द्वारा बताई गई बातें मेल खाती थीं। किंतु कांग्रेस ने जांच-अधिकारी पर दबाव डालकर उसे जांच की दिशा मोड़ने के लिए विवश किया। स्वामी असीमानंद आदि को साजिश के तहत फंसाया गया। ये सब तथ्य सार्वजनिक जानकारी में हैं। इन सबसे लेखक अनजान बने हुए हैं, जबकि हिंदू आतंक का ढोल फट चुका है।

aasthagarg546@gmail.com

ऐतिहासिक फैसला

चुनावी बांड पर सुप्रीम कोर्ट का ऐतिहासिक फैसला लोकतंत्र की शुचिता और पारदर्शिता के लिए मील का पत्थर साबित होगा। चुनावी बांड के जरिये विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा बड़ी मात्रा में काले धन को सफेद किया गया है, क्योंकि बांड के माध्यम से मिले चंदे में देने वाले की पहचान उजागर नहीं हो रही थी। सुप्रीम कोर्ट ने सभी पार्टियों को सीलबंद लिफाफे में बांड से प्राप्त चंदे का संपूर्ण विवरण देने के आदेश दिए हैं। चुनावी बांड में पारदर्शिता लाने के लिए दानदाताओं के नाम, दान की राशि और भुगतान संबंधी समस्त विवरण आदि सभी सार्वजनिक होना चाहिए। हो सकता है ये चंदा किसी ने अपने आर्थिक स्वार्थ के लिए दिया हो।

sonimohit895@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :

दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग,रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।